Journal of Advances and Scholarly Researches in Allied Education
Vol. 16, Issue No. 5, April-2019, ISSN 2230-7540

आधुनिक हिन्दी गद्य साहित्य में 'भारतेन्दु-युग'

Dr. Okendra*

PhD Scholarly, Department of Hindi, Uttarakhand

सारांशः – *भारतेन्दु-युग आधुनिक हिन्दी-गद्य साहित्य के बहुमुखी विकास का युग है। भारतेन्दु- युग में अर्थात् उन्नीसवीं सदी के अन्तिम चरण में पूरे देश में 'सांस्कृति-जागरण' एवं 'राष्ट्रीय-जागरण' की लहर दौड़ चुकी थी और सामंतीय सामाजिक ढांचा टूट चुका था। अंग्रेजी-शिक्षा के विकास की गति चाहे जितनी भी धीमी रही हो और उसके उद्देश्य चाहे जितने भी सीमित रहे हों, उसका व्यापक प्रभाव सम्पूर्ण देश के शिक्षित समाज पर पड़ रहा था, जिसके परिणाम स्वरूप सम्पूर्ण देश में एक सशक्त मध्यमवर्ग तैयार हुआ, जो अत्यधिक संवेदनशील था। देश में यह वर्ग व्यापक 'राष्ट्रीय' एवं 'सामाजिक' हितों की दृष्टि से भी सोचने लगा तथा अनुभव करने लगा कि हमारा देश अत्यन्त 'हीनावस्था' में है तथा जीवन के सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, राजनीतिक इत्यादि सभी क्षेत्रों में परिवर्तन एवं सुधार की आवश्यकता है।*

भारतेन्दु जी इसी प्रगतिशील चेतना के प्रतिनिधि थे भारतेन्दु जी ने अपने हिन्दी-गद्य-साहित्य के माध्यम से ठीक समय पर उचित नेतृत्व प्रदान किया और अपने निबन्धों, नाटकों तथा भाषणों में 'राष्ट्रीय-जागरण' का संदेश दिया। जो संदर्भित समय की एक मूल आवश्यकता थी। जिससे देश में 'राष्ट्रीय भावना' का अद्घोष हुआ तथा देशवासी अपने कत्तव्यों का निर्वहन कर 'राष्ट्रीयजागरण' के प्रति उत्तरदायी बनें, तथा इनके सहयोगी कवियों ने उनके द्वारा 'प्रशस्त-पथ' पर चल कर 'आधुनिक हिन्दी ग़द्य-साहित्य, की जो सेवा अपने आलेखों, कृतियों, रचनाओं, इत्यादि के द्वारा की है, वह अविस्मरणीय है।

प्रस्तुत लधु शोध में शोधार्थी द्वारा आधुनिक हिन्दी-साहित्य में भारतेन्दु-युग के महत्व के बारे में संक्षेप में वर्णन किया है। जिसमें भारतेन्दु-युग में पुर्नजागरण, भक्ति-भावना, सामाजिक-चेतना, समस्यापूर्ति, काव्य श्रृंगारिता तथा विभिन्न काव्यधाराओं इत्यादि का संक्षेप में साहित्यिक महत्व प्रस्तुत किया गया है।

कूट शब्दः *आधुनिक-काल, साहित्यक-विभाजन, भक्ति-भावना, सामाजिक-चेतना, प्रकृति-चित्रण, श्रृंगारिकता, समस्यापूर्ति।*

----------x----------

प्रस्तावनाः

आधुनिक हिन्दी गद्य-साहित्य के विकासक्रम में भारतेन्दु-युग का महत्व और मूल्य असाधारण है। इसी युग में हिन्दी-प्रदेश में आधुनिक जीवन-चेतना का उन्मेश हुआ। मध्यमवर्गीय सामाजिक चेतना में साहित्य रचना का जो स्वरूप उभरा, उसमें कहीं-कहीं सामंतीय संस्कारों का अवशेष लक्षित भी अवश्य होता है, किन्तु वह टूटने के क्रम में है। यह भी उल्लेखनीय है कि ब्रिटिश-शासनकाल-व्यवस्था की दृढ़ता के बावजूद उसे प्रति विरोध का भाव आधुनिक हिन्दी गद्य-साहित्य के 'भारतेन्दु-काल' के प्रत्येक साहित्यकार के मन में विद्यमान है। देश और समाज के हित की भावना से सभी आच्छादित हैं। साहित्य-सर्जन की दृष्टि से आधुनिक हिन्दी गद्य-साहित्य की प्रायः सभी विधाओं का सूत्रपात इसी काल में हुआ। विशेषतः हिन्दी-साहित्य की निबन्ध और नाटक मुख्यतः इन दोनों ही विधाओं में लेखकों ने अभूतपूर्व सफलता प्राप्त की तथा उपन्यासों के लेखन में भी इसी युग में सफलता के स्वर ध्वनित होते हैं।[1]

अतः सबकुछ मिला-जुला कर भारतेन्दु-काल का साहित्य, व्यापक जागरण का संदेश लेकर आया और हिन्दी साहित्य में भाषा के स्वरूप में अभूतपूर्व प्रगति हुई। इस युग में न केवल आधुनिक हिन्दी-गद्य का स्वरूप स्थिर हुआ, वरन् इसके शुद्ध साहित्योपयोगी और व्यवहारोपयोगी रूपों की पूर्ण प्रतिष्ठा भी इसी युग में हुई। इस प्रकार 'भाषा' और 'साहित्य' दोनों आपस में जुड़ गये तथा पत्र-पत्रिकाओं के प्रकाशन और प्रचार की गति में भी तीव्र वृद्धि हुई। अतः किसी भी

[1] डॉ. नगेन्द्र एवं डॉ. हरदयाल हिन्दी साहित्य का इतिहास पृष्ठ संख्या-473

साहित्यिक-भाषा के इतिहास में इतनी अल्प अवधि में होने वाली संदर्भित काल की प्रगति, हिन्दी गद्य-साहित्य के इतिहास में हमेशा हमें गौरवान्वित ही समझी जाऐगी।

आधुनिक हिन्दी गद्य-साहित्य में "आधुनिक-काल"

हिन्दी गद्य-साहित्य के इतिहास में काल का सीमांकन सबसे जटिल समस्या है। किसी काल-खण्ड का आरम्भ किस समय से प्रारम्भ होता है, इसे वैज्ञानिक सत्य के आधार पर ही नहीं बतलाया जा सकता है वरन् एक कालखण्ड, दूसरे कालखण्ड से बदलाव के कारण अलग-अलग होता है। बदलाव की यह प्रक्रिया तो एक अरसे से चली आ रही है, परन्तु नये कालखण्ड का निर्धारण तब होता है जब बदलाव के चित्र हमारी आर्थिक-सांस्कृतिक, स्थितियों, काल-रूपों, तथा भाषा में स्पष्ट रूप से दिखाई देने लगते हैं। इसलिए साहित्येतिहास के लेखन में जो भी काल-निर्धारण किया जाऐगा, वह वस्तुतः लचीला ही माना जाऐगा।

'हिन्दी गद्य-साहित्य के इतिहास' में 'आधुनिक-काल' के विकास का क्रम एक शताब्दी पहले से ही प्रारम्भ हो गया था तथा बदलाव के स्पष्ट चिन्ह उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में दिखाई देने लगे थे। संयोगवश हिन्दी-साहित्य के आधुनिकतम् जीवन बोध के प्रर्वतक माने जाने वाले इतिहासकार 'भारतेन्दु-हरिशचन्द्र' जी का जन्म उन्नीसवीं सदी के ठीक मध्य में सन् 1850 में हुआ। अतः इतिहासकारों ने इस वर्ष को ही आधुनिक हिन्दी गद्य-साहित्य के इतिहास में आरम्भ वर्ष मान लिया। किन्तु इतिहास की गतिमानता एवं बदलाव में यह वर्ष स्वयं किसी तरह की भूमिका अदा नहीं करता। इतिहास के काल-विभाजन की रेखा कम से कम दो विभिन्न प्रवृत्तियों को स्पष्टतः अलग करने वाली तथा इस अलगाव के लिए स्वयं भी बहुत कुछ उत्तरदायी हो ना चाहिए। यदि सन् 1857 को आधुनिक काल का प्रारम्भिक काल विन्दु मान लिया जाये, तो उपर्युक्त दोनों शर्तें पूरी हो जाती हैं।

आधुनिक हिन्दी गद्य-साहित्य में "आधुनिक-काल" का उपविभाजन:

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जी ने 'आधुनिक-काल' का जो उप-विभाजन किया है। वह एकसूत्रता के अभाव में विसंगतिपूर्ण हो गया है। उन्होंने आधुनिक काल को दो भागों में बांटा है-

1- गद्य खण्ड

2- काव्य खण्ड

उपर्युक्त ये दोनों खण्ड एक-दूसरे से इतने पृथक हैं कि इनमें एकरूपता तथा एकतानता नहीं पायी जाती है। दोनों खण्डों को दो-दो प्रकरणों में बांटा गया है। गद्य-खण्ड के पहले प्रकरण में ब्रजभाषा-गद्य और खड़ी बोली-गद्य का विवेचन है। दूसरे प्रकरण में गद्य-साहित्य का आर्विभाव विश्लेषित है तथा इसे फिर से तीन उत्थानों में विभक्त किया गया है-प्रथम उत्थान, द्वितीय उत्थान और तृतीय उत्थान। शुक्ल जी के गद्य-खण्ड और काव्य-खण्ड दोनों ही एक दूसरे से सर्वथा अलग-अलग हैं। एक की प्रवृत्ति का दूसरे की प्रवृत्ति से कोई भी तालमेल नहीं है। ऐसा लगता है कि मानो गद्य-खण्ड में एक प्रवृत्ति क्रियाशील है, तो काव्य-खण्ड में दूसरी प्रवृत्ति क्रियाशील है।

उदाहरणार्थ, काव्य-खण्ड एक-दूसरे से सर्वथा अलग, दूसरे प्रकरण के तृतीय उत्थान (काव्य में जिसे 'छायावाद' के नाम से निरूपित किया गया है) तथा गद्य-खण्ड के द्वितीय प्रकरण के तृतीय उत्थान में कोई एकरूपता निरूपित नहीं की जा सकती है। शुक्ल जी के परवर्ती इतिहासकारों ने प्रायः शुक्ल जी का अनुगमन किया है तथा आधुनिक 'हिन्दी गद्य-साहित्य' में छायावादी-युग सर्वमान्य हो गया है। इसको केन्द्र-विन्दु मानकर इस काल का उपविभाजन करना अधिक सुविधाजनक हो गया। छायावाद काल के पूर्व हिन्दी-साहित्य परिष्कार की दो मंजिलों से गुजर चुका था-पुर्नजागरण-काल और सुधार-काल। राजा राममोहन राय, केशवचन्द्र सेन, दयानन्द सरस्वती, विवेकानन्द, आदि के कारण जो पुर्नजागरण आया वह ऐतिहासिक तथ्य हो गया इसका सीधा प्रभाव हिन्दी-साहित्य पर पड़ा। साहित्य अपने नवीन पर्यावरण से जुड़ कर मध्यकालीन प्रवृत्तियों से पृथक हो गया।

अतः आधुनिक-काल की पहली मंजिल को 'पुर्न जागरण-काल' कहना उचित है। दूसरी मंजिल पर साहित्यकार अपने कृत्य, रूपाकार, और भाषा के सुधार परिष्कार में संलग्न दिखायी पड़ते हैं। अतः इसे "सुधार-काल" की संज्ञा भी दी जानी चाहिए।

अतः संक्षेप में, आधुनिक काल के उप-विभाजन का प्रारूप निम्नलिखित ढंग से प्रस्तुत किया जा सकता हैः-

1- पुर्नजागरण काल (भारतेन्दु काल)

1857-1900 इ.

2- जागरण-सुधार-काल (द्विवेदी काल)

1900-1918 ई.

3- छायावाद-काल 1918-1938 ई.

4- छायावादोत्तर-काल

क- प्रगति-प्रयोग-काल 1938-1953

ख- नवलेखन-काल 1953 से वर्तमान तक

किसी भी साहित्यक-काल में कोई भी बदलाव यूँ ही नहीं आता, बल्कि कुछ कारण हो ते हैं। दो संस्कृतियों का अन्तरावलम्बन परिवर्तन के लिए उतना कारगर नहीं होता, जितने समाज के बुनियादी ढांचे को बदलने वाले आर्थिक कारण प्रभावशाली होते हैं तथा मुख्य कारण आर्थिक होता है, जो सांस्कृतिक कारण गौण होते हैं, पर इन दो नों को लाने का दायित्व जाने-अनजाने अग्रेजों पर ही रहा है। अतः आधुनिक काल का परिवर्तनमान प्रक्रिया को समझने के लिए शोधार्थी द्वारा इनका विवेचन करना अति आवश्यक है।

आधुनिक हिन्दी गद्य-साहित्य में "भारतेन्दु-युग":

भारतेन्दु-युग अथवा पुर्नजागरण-काल का उदय आधुनिक हिन्दी गद्य-साहित्य में हिन्दी-कविता के लिए नवीन-जागरण के संदेशवाहक-युग के रूप में हुआ था किन्तु इसके सीमाँ कन के सम्बन्ध में विद्वानों में मतभेद है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने भारतेन्दु हरिश्चन्द्र (1850-1885) के रचनाकाल को दृष्टि में रख कर सम्वत् 1925 से 1950 की अवधि को 'नयी-धारा' अथवा 'प्रथम-उत्थान' की संज्ञा दी है, और इस काल को भारतेन्दु हरिश्चन्द्र तथा उनके सहयोगी लेखकों के कृतियों से समृद्ध माना गया है किन्तु उनके द्वारा निर्धारित कालावधि से कुछ लेखकों का वैमत्य है। मिश्रबन्धुओं ने 1926 से 1945 वि0सम्वत् तक, डॉ. रामकुमार वर्मा ने 1927 से 1957 वि. सम्वत् तक, डॉ. केसरी नारायण शुक्ल ने 1922 से 1957 वि. सम्वत् तक और डॉ. रामविलास शर्मा ने 1925 से 1957 वि.सम्वत् तक 'भारतेन्दु युग' की ब्याप्ति मानी है।[2]

उल्लेखनीय यह है, कि भारतेन्दु द्वारा सम्पादित मासिक पत्रिका 'कविवचनसुधा' का प्रकाशन 1868 ई. में प्रारम्भ हुआ था। अतः भारतेन्दु युग का उदय 1968 ई. (1925 वि0सम्वत्) से मानना उचित है। तथा इसी तर्क का अनुसरण करते हुए 'सरस्वती' नामक पत्रिका का प्रकाशन-वर्ष 1900 ई. को भारतेन्दु-युग की समाप्ति का सूचक भी माना जा सकता है। यह ठीक ही है कि भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के देहावसान के साथ ही भारतेन्दु-युग की समाप्ति न मान कर उनके समकालीन कवियों के द्वारा बाद में रचित-कृतियों को ध्यान में रखते हुए इस काल की ब्याप्ति 1900 ई. तक स्वीकार की गयी, क्यों कि इस समय तक हिन्दी साहित्य-क्षेत्र में अने कों नवीन प्रवृत्तियो का उदय होने लगा था किन्तु यह जिज्ञासा प्रासंगिक हो गी कि रीतिकाल के समापन से ले कर भारतेन्दु-युग का पूर्वकाल (1843 से 1867 ई.) तक की रचनाओं का अनुशीलन किस संदर्भ में किया जाना चाहिए?

वस्तुतः इतिहास का कोई भी काल सहस्र ही समाप्त नहीं हो सकता है और प्रायः अगले एक-दो दशक तक उसकी रचना, प्रवृत्तियाँ किसी न किसी रूप में ब्यक्त होती रहती हैं। इसी भाँति किसी नये युग का सुभारम्भ भी सहसा नहीं होता है, उसके स्वरूप-निर्माण की प्रक्रिया के बीज, दस-बीस साल तक के पहले साहित्य मे विद्यमान रहते हैं। 1843 से 1867 ई. तक का कृतित्व न तो पूर्णतः रीतिकाल के प्रभावक्षेत्र में आता है और न ही इसमें भारतेन्दु-युग की पुर्नजागरण-मूलक प्रवृत्तियाँ विद्यमान होती हैं। अतः इसका अनुशीलन "भारतेन्दु-युग" की पृष्ठभूमि के रूप में किया जाना चाहिए।

आधुनिक हिन्दी गद्य-साहित्य में 'भारतेन्दु' पूर्व साहित्यिक 'काव्यधारा':

भारतेन्दु के पूर्ववर्ती कवियों की ब्रजभाषा-रचनाओं को निम्नलिखित तीन वर्गों मे विभक्त किया जा सकता हैः-

1- भक्ति काव्य,

2- श्रृंगार रस का काव्य,

3- रीति-निरूपण काव्य

भक्तिकाव्य के रचियताओं में रीवा-नरेश रधुराजसिंह (1823 से 1879) का प्रमुख स्थान है उन्होंने प्रबन्ध और मुक्तक दोनों शैलियों में लगभग अट्ठाइस कृतियों की रचना की थी। जिनमें कुछ 'भारतेन्दु-युग' की परिधी में आती हैं।

उदाहरणार्थ, 'सुंदर शतक', 'पत्रिका', 'रूक्मिणी-परिणय,' 'आनन्दाम्बुनिधि,' और 'श्रीमद्भागवत महात्म्य,' भारतेन्दु-पूर्व काल की कृतियाँ हैं। जबकि 'रामस्वयं वर,' 'भक्तिविलास,' 'रामरसिकावली,' आदि की रचना सन् 1869 अथवा इसके बाद की हैं। वे मुख्यतः 'रामभक्त' थे, किन्तु कृष्ण लीलाओं का गान भी उन्होंने पूर्ण मनोयो गपूर्वक किया है। भक्ति के साथ श्रृंगारिकता भी उनके काव्य में विद्यमान है। सूर और तुलसी जैसी भक्ति भावना, केशव जैसा प्रबन्ध-

[2] डॉ. नगेन्द्र एवं डॉ. हरदयाल हिन्दी साहित्य का इतिहास पृष्ठ संख्या-437

कौशल, और ब्रजभाषा की रमणीयता उनके कृतित्व की उल्लेखनीय विशेषताएँ हैं। कृष्णभक्त कवियों में लखनऊ के वैश्य बंधुओं 'साह कुंदनलाल' तथा 'साह फुंदनलाल' का उल्लेख अपेक्षित है जिन्हों ने वृंदावन में निवास कर क्रमशः 'ललित किशोरी' तथा 'ललित माधुरी' नामों से माधुर्य भक्तिपरक पदों की रचना की। इनमें ललित किशोरी (रचनाकाल-1856 से 1873) का स्थान प्रमुख है। उनकी काव्यशैली भी अपेक्षाकृत अधिक प्रौढ़, मधुर व मार्मिक है।[3]

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के पिता गोपालचन्द्र 'गिरिधरदास' (1833 से 1860) द्वारा लिखित 'राधास्तोत्र,' 'गोपालस्तोत्र,' 'जरासन्धवध महाकाव्य' और 'बलराम-कथामृत' भी 'कृष्ण-कथा' पर आधारित रचनाएँ हैं। यूँ तो उन्हों ने 'रामकथामृत' की भी रचना की है। भाषा-परिष्कार और अलंकार-नियो जन पर उनका विशेष ध्यान रहा है।

आधुनिक हिन्दी गद्य-साहित्य में "भारतेन्दु-युग" का नवीन-परिवेश:

आलोच्य-युग में जनचेतना पुर्नजागरण की भावना से अनुप्राणित थी फलस्वरूप सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनैतिक क्षेत्रों में न केवल अतिरिक्त सक्रियता थी, अपितु इन सब में गहन अन्तः सम्बन्ध विद्यमान था। भारतेन्दु-युगीन कवि-कर्तव्य पर इसका प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था। इसकी परणति विशय-चयन में ब्यापकता और विविधता के रूप में हुई। श्रृंगारिक रसिकता, अलंकार-मोह, रीति-निरूपण, प्रकृति उद्दीपनात्मक चित्रण, प्रभृति रीतिकालीन प्रवृत्तियों का महत्व क्रमशः कम होता गया।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने जनता को उद्बोधन प्रदान करने के उद्देश्य से 'जातीय-संगीत' अर्थात् 'लोक-गीत' की शैली पर सामाजिक कविताओं की रचनाओं पर बल दिया। मातृ-भूमि प्रेम, स्वदेशी वस्तुओं का व्यवहार, गौरक्षा, बालविवाह-निषेध, शिक्षा-प्रसार का महत्व, मद्य-निषेध, भ्रूण हत्या की निंदा, आदि विषयों को कविगण शोधार्थी के अनुसार इस युग में अधिकाधिक अपनाने लगे थे। 'राष्ट्रीय-भावना' का उदय भी हिन्दी साहित्य के इस काल की अनन्य विशेषता है"।[4]

आधुनिक हिन्दी गद्य-साहित्य में "भारतेन्दु-युगीन" रचनाओं में 'देशभक्ति':

भारतीय वीरों में प्रताप, छत्रसाल, शिवाजी आदि ने क्षेत्र विशेष (चित्तौड़, बुन्देलखण्ड, और महाराष्ट्र) की रक्षा के लिए जिस तत्परता और दृढ़ता का परिचय दिया था, उसका स्तवन करने वाले भूषण प्रभृति कवि क्षेत्रीय भावना अर्थात संकीर्ण राष्ट्रीयता से ऊपर नहीं उठ सके थे। 'भारतेन्दु –युगीन' कवियों ने भारतीय इतिहास के गौरवशाली पृष्ठों की स्मृति तो अनेक बार दिलायी, पर उनकी 'राष्ट्रीय-भावना' केवल यहीं तक सीमित नहीं रही। अंग्रेजों की विचारधारा और उनकी देशभक्तिपूर्ण कविताओं से भी उन्होंने यथेष्ट प्रेरणा ली, जिसका फल यह हुआ कि क्षेत्रीयता से ऊपर उठकर वे सम्पूर्ण राष्ट्र की नब्ज को टटोलने लगे। 'हमारो उत्तम भारत देश' (राधाचरण गोस्वामी) और 'धन्य भूमि भारत सब उतननि की उपजाबनि' (प्रेमघन) आदि काव्य पंक्तियाँ शोधार्थीनुसार इसी तथ्य को प्रकट करती हैं।[5]

'देशभक्ति' की भावना बाद में मैथलीशरणगुप्त कृत 'भारत-भारती', में देखने को मिलती है। उसकी प्रेरणा-भूमि भारतेन्दु, प्रेमघन, प्रतापनारायण मिश्र, राधाकृष्णदास आदि की कविताएँ ही हैं। भारतेन्दु की 'विजयिनी विजय वैजयन्ती', प्रेमघन की 'आनन्द अरूणो दय', प्रतापनारायण मिश्र की 'महापर्व'और 'नया सम्वत्' तथा राधाकृश्णदास की 'भारत बारहमासा' और 'विनय' शीर्षक कविताएँ 'देशभक्ति' की प्रेरणा से युक्त हैं। इस संदर्भ में उन्हों ने अपने प्रतिपाद्य को कहीं ब्यंग्योक्तियों के माध्यम से भी प्रकट किया तो कहीं, अतीत के प्रेरणदायी प्रसंगों की चर्चा द्वारा नवयुवकों को पुर्नजागरण का मन्त्र दिया है। अंग्रेजों की 'शोषण-नीति' का भारतेन्दु जी द्वारा प्रत्यक्ष उल्लेख शोधार्थीनु सार, प्रस्तुत निम्न पंक्ति में इस भावना की चरम परिणति है-

भीतर-भीतर सब रस चूसै, हँसि-हँसि के तन-मन-धन मूसै।

जहिर बातन में अति ते ज, क्यों सखि सज्जन! नहीं अंगरेज़।।

(भारतेन्दु हरिश्चन्द्र)

[3] डॉ. नगेन्द्र एवं डॉ. हरदयाल हिन्दी साहित्य का इतिहास पृष्ठ संख्या-438

[4] डाॅ. नगेन्द्र एवं डाॅ. हरदयाल हिन्दी साहित्य का इतिहास पृष्ठ संख्या-339

[5] डाॅ. नगेन्द्र एवं डाॅ. हरदयाल हिन्दी साहित्य का इतिहास पृष्ठ संख्या-440

आधुनिक हिन्दी गद्य-साहित्य में "भारतेन्दु-युगीन" रचनाओं में 'सामाजिक-चेतना':

आधुनिक हिन्दी गद्य-साहित्य में 'भारतेन्दु-युग' की मुख्य विशेषता यह रही है कि कवियों ने सामाजिक जीवन की उपेक्षा न कर जनता की समस्याओं के निरूपण की ओर पहली बार व्यापक रूप में ध्यान दिया। इससे पूर्व रीतिकाल में राजाओं और सामन्तों के आश्रय में लिखित दरबारी काव्य में सामाजिक परिवेष के चित्रण की ओर नगण्य रूप में ध्यान दिया। इसलिए भारतेन्दु-युग में नारी-शिक्षा, विधवाओं की दुर्दशा, अस्पृश्यता-छुआछूत आदि को लेकर जो सहानुभूतिपूर्ण कविताएँ लिखी गयीं। उनके प्रतिपाद्य की नवीनता ने सःहृदय सामाजिक-समुदाय को विशेष अकृष्ट किया। उपरोक्त संदर्भित इन समस्याओं को रूपायित करने के लिए कवियों ने एक-दूसरे के साथ और मध्यमवर्गीय सामाजिक परिस्थितियों का चित्रण किया, तो दूसरी ओर रूढ़िवादिता का विरोध कर सामाजिक-विकास-चेतना की आंकाक्षाओं का भी अपनी रचनाओं में अभिव्यक्ति की। किन्तु फिर भी आर्यसमाज, ब्राह्मसमाज आदि के प्रभाव से इस युग में जो नवीन सामाजिक-चेतना उभरने लगी थी और भारतेन्दु, प्रेमघन, प्रतापनारायण मिश्र, आदि की रचनाओं में जिस सुधारवादी मनोवृत्ति की प्रमुखता रही, उसके प्रति सभी कवियों का दुष्टिकोण उदारता-समन्वित नहीं था।

'भारत-धर्म' कविता में अम्बिकादत्त व्यास द्वारा वर्णाश्रम-धर्म का दृढ़तापूर्वक अनुमादन और रामचरण गोस्वामी द्वारा विभिन्न कविताओं में प्राचीन शास्त्र-नीतियों का समर्थन एवं विधवा-विवाह का विरोध ऐसे ही उदाहरण हैं जिनमें भारतेन्दु-युगीन समस्याओं की जानकारी ऐसे कवियों को भी पूरी तरह थी, किन्तु उनके सामाधान के लिए वे परम्परागत धर्म शास्त्र को ही आधार बनाना चाहते थे। इसके विपरीत भारतेन्दु जी ने 'भारत-दुर्दशा' नाटक में वर्णाश्रम धर्म की संकीर्णता का विरोध प्रस्तुत निम्नार्थ शब्दों में किया-

"बहुत हमने फैलाये धर्म, बढ़ाया छुआछूत का कर्म"

(भारतेन्दु हरिश्चन्द्र)

'मन की लहर' में प्रताप नारायण मिश्र की दृष्टि बाल-विधवाओं की करूण दशा की और गयी जिसका उदाहरण निम्नवत है-

"कौ न करेजो नहि कसकत सुनि बिपति बालबिधवन की"

(प्रतापनारायण मिश्र)

भारतीय अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ करने की कामना से संदर्भित इस युग के कवियों ने स्वदेशी उद्यो गों का प्रो त्साहन देने के लिए और स्वदेशी वस्तुओं का प्रयोग करने पर भी बल दिया। जिसका उदाहण भारतेन्दु जी ने 'प्रबोधिनी' नामक कविता में विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार करने की प्रत्यक्ष प्रमाण कवि की निम्न रचना में मिलता है-

"जीवन बिदेस की वस्तु लै तो बिन कछु नहि करि सकत"

(भारतेन्दु हरिश्चन्द्र)

प्रेमघन की 'आर्याभिनन्दन', प्रतापनारायण मिश्र की 'होली है' तथा अम्बिकादत्त व्यास की 'भारतधर्म' शीर्षक नामक रचनाओं में भी विदेशी वस्त्रों और अन्य वस्तुओं के आयात को भारत की आर्थिक दुर्गति का मूल कारण माना गया है। यद्यपि प्रेमघन ने 'स्वागत' शीर्षक कविता में, अम्बिकादत्त व्यास के 'जटिल वणिक्' में और राधाकृष्णदास ने 'जुबिली' में बिजली, यातायात के सुगम साधनों, सिंचाई की सुविधाओं में, शिक्षा-प्रसार आदि का अलभ्य लाभ प्रदान करने के लिए ब्रिटिश शासन की भी प्रशंसा की है, परन्तु इसके साथ भी वह यह नहीं भूले कि सामान्य जनता और किसानों की दरिद्रता घटने के स्थान पर बढ़ती ही गयी, अर्थात् इसीलिए पाश्चात्य सभ्यता के सम्पर्क में देश के सांस्कृतिक पुनरूत्थान की आवश्यकता का अनुभव करते हुए भी उन्होंने शासक वर्ग द्वारा देश के आर्थिक शोषण का घोर विरोध अपनी रचनाओं, कृतियों के माध्यम से किया। प्रतापनारायण मिश्र की 'एक गज़ल' रचना में 'भारत-दुर्दशा' पर गहरी चिंता शोधार्थी के अनुसार निम्नवत प्रकट की गयी है-

"अभी देखिए क्या दशा देश की हो, बदलता है रंग आसमां कैसे कैसे!"

(प्रतापनारायण मिश्र)

कहाँ तो प्राचीन भारत की भौतिक और सांस्कृतिक समृद्धि और कहाँ अकाल, महँगाई, महामारी तथा करों के बोझ से त्रस्त जन-जीवन! परिवार, समाज और देश की क्रमशः बढ़ती हुई हीन भावना के चित्रण में भी रचनाकारों की वाणी अनायास करूणा से भीग उठी। अतः भारतेन्दु जी ने और प्रतापनारायण मिश्र जी ने समाज की सम्पूर्ण पीड़ा का सहतार्थ वर्णन निम्नवत् किया-

"रोवहू सब मिलि, आवहु भारत भाई।

हा!हा! भारत-दुर्दशा न देखी जाई।।"

(भारतेन्दु हरिश्चन्द्र)

"तबहि लख्यो जहं रह्यो एक दिन कंचन बसरत।

तहं चैथाई जन रूखी रोटिहुं को तरसत ।।

जहं आमन की गुठली अरू बिरछन की छालैं।

ज्वार चून महं मेलि लोग परिवारहिं पालैं।।

नौन तेल लकरी घासहु पर टिकस लगे जहं।

चना चिरौंजी मोल मिलैं जहं दीन प्रजा कहं।।"

(प्रतापनारायण मिश्र)

अभिप्राय यह है कि 'सामाजिक-परिवेश' के चित्रण में कुछ कवियों की दृष्टि सुधारवादी थी, तो कुछ कवियों की दृष्टि यथास्थितिवादी भी थी। जिनका उदाहरण प्रस्तुत उपरोक्त वर्णन में निहित है।

आधुनिक हिन्दी गद्य-साहित्य में "भारतेन्दु-युगीन" लेखन में 'भक्ति-भावना':

आधुनिक हिन्दी गद्य-साहित्य में भारतेन्दु-युग में परम्परागत धार्मिक और भक्ति-भावना का अपेक्षाकृत गौण स्थान प्राप्त हुआ है। फिर भी इस काल के भक्तिकाव्य को तीन वर्गों में विभावजित किया जा सकता है-

1. निर्गुण भक्ति काव्य,
2. वैष्णव भक्ति काव्य,
3. स्वदेशानुराग-समन्वित ईश्वर-भक्ति।

उक्त प्रथम दो में किसी उल्लेखनीय नवीनता का परिचय न हुआ बल्कि मध्ययुगीन परिपाटी का अनुसरण मात्र ही किया गया, किन्तु भक्ति और देश-प्रेम को एक ही समकोण पर प्रतिश्ठित करना, किसी सीमा तक संवेदन की 'मौलिकता' का परिचायक है। निर्गुण-भक्ति इस काल में मुख्य साधना-दिशा नहीं थी, फिर भी कुछ कवियों ने परम्परा के प्रभावस्वरूप संसार की नश्वरता, माया-मोह, की व्यर्थता, विषयाशक्ति की निंदा, आदि विषयों पर तो उपदेशात्मक ढंग से विचार व्यक्त किये हैं।

किन्तु ब्रह्य-चिंतन और हठयोग जैसे विषयों पर काव्य-रचना उन्हें अभीष्ट नहीं करती। इसके विपरीत वैश्णव-भक्ति के अंतर्गत भगवान श्री-राम, भगवान श्री-कृष्ण और अन्य देवी-देवताओं का वर्णन अनेकों कवियों द्वारा किया गया।

उदाहरणार्थ, बिहार के अल्पज्ञात कवि हरिनाथ पाठक (1843-1904) की कृति "ललित रामायण"(1893), वहीं बिहार के ही दूसरे कवि अक्षय कुमार द्वारा प्रणीत "रसिकविलास रामायण"(1886) और बाबू तो ताराम (1848-1902) की "राम-रामायण" भगवान श्री राम-भक्ति के संदर्भ में उल्लेखनीय रचनाएँ हैं। हरिनाथ पाठक की रचना से राम-काव्य की सुपरिचित श्रृंगार-पद्धति के अनुसरण में शोध फलस्परूप निम्नलिखित पद्य द्रष्टव्य है-

मुरूगवा बोले बिपिन में भोरे।

सुखद सेज सोवत रघुनन्दन, जनक लली संग कोरे ।

प्रीतम अंक लगी महाराणी शापति सुनि खग सो रे।।

बन में अवरन जागे खग सब, शब्द करत झकझोरे ।

जन हरिनाथ समय सुखदायक, नहि भावत मन मोरे।।

(हरिनाथ पाठक)

राम-काव्य की तुलना में कृष्णभक्ति-काव्य की रचनाओं का अधिक परिमाण इसी युग में हुआ। इस दिशा में सबसे अधिक योगदान भारतेन्दु जी का है। भारतेन्दु जी राधा-कृष्ण के भी अनन्य भक्त थे। जिसका जीवन्त उदाहरण निम्नलिखित पंक्ति में दिया जा रहा है -

"सखा प्यारे कृष्ण के गुलाम राधारानी के"

उक्त पंक्ति की भावना के अनु कूल संख्या और विनय भाव की भक्ति का दर्शन मिलता है। वात्सल्य भक्ति के भी कुछ पद उन्होंने लिखे हैं। अन्य धर्मों के प्रति उनका दृष्टिकोण उदारतापूर्ण था। इसीलिए उन्हों ने निम्न पंक्ति में धार्मि क मतभेदियों की भत्र्सना की है-

"अपुनो मत लै लै सब झगरत ज्यों भठिहारे"

(भारतेन्दु हरिश्चन्द्र)

इसी प्रकार उन्हो ने अपनी भक्ति-भावना को उर्दू-पद-शैली में भी निम्नवत व्यक्त की-

ढूँ ढ फिरा मैं इस दुनिया में पश्चिम से ले पूरब तक।

कहीं न पायी मेरे दिलदार प्रेम की तेरे झलक।

मसज़िद मन्दिर गिरजों में देखा मतवालों का जो दौर।

अपने अपने रंग में रंगा दिखाया सब का तौर।

सिवा झूठी बातों व बनावट के न नज़र आया कुछ और।

(भारतेन्दु हरिश्चन्द्र)

आधुनिक हिन्दी-साहित्य में "भारतेन्दु-युगीन" रचनाओं में 'श्रृंगारिकता की अभिव्यक्ति':

आधुनिक हिन्दी गद्य साहित्य में भारतेन्दु और उनके समकालीन कवियों ने रस को काव्य की आत्मा मान कर अपनी रचनाओं में विविध रसानुभूतियों का भावन किया है, जिनमें श्रृंगार रस सर्वप्रमुख है। प्रतापनारायण मिश्र के अतिरिक्त प्रायः सभी मुख्य कृति 'श्रृंगार-वर्णन' की ओर उन्मुख रहे हैं। रीतिकालीन कवियों का अनुसरण करते हुए सामान्यतः उन्हों ने कृष्णकथा के संदर्भ में प्रेम और सौंदर्य का वर्णन किया है, किन्तु राधाकृष्णदास की 'राम-जानकी' कविता में मर्यादित-श्रृंगार और हरिनाथ पाठक की 'श्री ललित रामायण' आदि में 'रामकथा' की रसिकतायुक्त अवधारणा भी मिलती है। श्रृंगार-वर्णन के लिए इनके सामने चार विकल्प थे-[6]

भक्तिकालीन कृष्णकाव्य की परम्परा में माधुर्यभक्तिपरक श्रृंगार-चित्रण, रीतिकालीन पद्धति पर नखशिख, शड्ऋतु और नायिकाभेद का वर्णन, उर्दू-कविता से सम्पर्क के फलस्वरूप प्रेम की वेदनात्मक व्यंजना, और अंग्रेजी की प्रेम-कविताओं से प्रभाव-ग्रहण। इनमें से अन्तिम को छोड़ कर शेष तीनों की परिव्याप्ति इस युग में मिलती है, विशेष रूप से भारतेन्दु और प्रेमघन की रचनाओं में प्रायः ये तीनों विद्यमान हैं। भारतेन्दु ने 'प्रेम-सरोवर', 'प्रेम-माधुरी', 'प्रेम-तरंग', 'प्रेम-फुलवारी', आदि में "भक्ति-श्रृंगार" और "विशुद्ध-श्रृंगार" दोनों का समावेश किया है। प्रेमघन की 'युगलमंगल-स्तोत्र' तथा 'वर्षा-विन्दु' भी इसी प्रकार की रचनाएँ हैं। सौंदर्य प्रेम और विरह की व्यंजना में कहीं-कहीं ये दोनों ही कवि उर्दू-काव्य-शैली से भी प्रभावित हुए हैं, किन्तु नखशिख और नायिकाभेद पर पारम्परिक शैली में काव्यरचना इन्होंने नहीं की वैसे, भारतेन्दु के पे्रमदशा-वर्णन सम्बन्धी अनेक सवैयों में घनानन्द जैसी सरसता विद्यमान है। जिसका उदाहरण निम्नवत है-

टाजु लौं न मिले तो कहा हम तो तु मरे सब भाँति कहावैं।

मेरौ उराहनौ है कछु नाहिं सबै फल आपुने भाग को पावैं।।

जो हरचन्द भई सो भई अब प्रान चले चहैं तासों सुनावैं।

प्यारे जू है जग की यह रीति बिदा की समैं सब कंठ लगावैं।।

आधुनिक हिन्दी-साहित्य में "भारतेन्दु-युगीन' रचनाओं में 'प्रकृति-चित्रण':

प्राकृतिक सौंदर्य का स्वच्छंद वर्णन आधुनिक हिन्दी-साहित्य में 'भारतेन्दु-युगीन' कविता की अंगभूत विशेषता है, किन्तु अधिकतर कवियों ने परम्परा-निर्वाह ही किया है। भारतेन्दु-कृत 'बसंत होली' अम्बिकादत्त व्यास की 'पावस-पचासा', गोविन्द गिल्लाभाई की 'शड्ऋतु' और 'पावस-पयोनिधि' आदि कृतियों में 'वसंत ऋतु' और 'वर्षा काल' का आलम्बनात्मक चित्रण मिलता है। ऋतु सौंदर्य के स्थान पर कवियों ने ऋतु विशेष में नायक-नायिका की मनो दशाओं के वर्णन में अधिक रूचि ली है। सौंदर्यबोध में सहायक स्वतन्त्र प्रकृति-चित्रण का श्रेय किसी स्तर तक ठाकुर जगमोहन सिंह का दिया जा सकता है। भारतेन्दुने 'सत्य हरिश्चन्द्र' नाटक में गंगा-वर्णन और 'चन्द्रावली' नाटिका में यमुना-वर्णन किया है। किन्तु अलंकार-भार के कारण इनमें उनकी स्वतन्त्र अनुभूति की क्षमता बहुत-कुछ दब सी गयी है। उनकी रचना 'प्रात समीरन', प्रेमघन की 'मयंक-महिमा' और प्रतापनारायण मिश्र की 'प्रेम-पुष्पांजलि' शीर्षक नामक कविताओं में विषय के स्वतन्त्र उपस्थान का यत्किंचित् प्रयास भी हुआ है, तो उसमें कवियों को उतनी सफलता नहीं मिली, क्योंकि प्रकृति को श्रृंगारिक मनो दशाओं, सामाजिक उद्बोधन, नीति-कथन आदि से सम्बद्ध करने की अनीवार्यता अभी उनके मन में बनी हुई थी। जगमोहन सिंह की कविताओं में इस प्रवृत्ति का अभाव नहीं था पर इनके साथ ही प्रकृति के शूक्ष्म नैसंर्गिक सौंदर्य से प्रेरणा ली है। विंध्य-प्रदेश की प्राकृतिक सुषमा का सजीव और वैविध्यपूर्ण चित्रण उनके काव्य की अनन्य विशेषता है जिसका उदाहरण निम्नवत शोधार्थी द्वारा दिया जा रहा-[7]

पहार अपार कैलास से काटिन ऊँची शिखा लगि अम्बर चूम।

निहारत दीठि भ्रमै पगिया गिरि जात उतं गता ऊपर झूम।।

प्रकाश पतंग सों चोटिन के बिकसै अरबिन्द मलिन्द सुझूम।

[6] डॉ. नगेन्द्र एवं डॉ. हरदयाल हिन्दी साहित्य का इतिहास पृष्ठ संख्या-444

[7] डॉ. नगेन्द्र एवं डॉ. हरदयाल हिन्दी साहित्य का इतिहास पृष्ठ संख्या-444, 445

लसै कटि मेखला के जगमोहन कारी घटा घन घोरत धूम।।

आधुनिक हिन्दी-साहित्य में "भारतेन्दु-युगीन" रचनाओं में 'हास्य-व्यंग्य' का वर्णन:

भारतेन्दु युग में हास्य-व्यंग्यात्मक रचनाओं की भी प्रचुर परिमाण में रचना हुई। पश्चिमी सभ्यता, विदेशी शासन, सामाजिक अंधविश्वासों, रूढ़ियों आदि पर व्यंग्य करने के लिए कवियों ने विषय और शैली की दुष्टि से अनेक नये प्रयोग किये। इस दिशा में भारतेन्तु जी का योगदान सर्वाधिक है। अपने नाटकों के प्रगीतो में कहीं-कहीं शिष्ट हास्य को स्थान देने के अतिरिक्त उन्होंने व्यंग्यगीतियों और मुकरियों की भी रचना की है। उनकी व्यंग्यगीतियों को तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है-[8]

1-पैराडी, 2-स्यापा, 3-गाली।

'बन्दसभा' के गीतों की रचना उन्होंने उर्दू-नाटक, 'इंदरसभा' के गीतों की पैरोडी के रूप में की है। 'उर्दू का स्यापा' उर्दू-फ़ारसी के 'स्यापा' नामक काव्यरूप की शैली में लिखित है, उदाहरण निम्नवत है-

"है है उर्दू हाय हाय, कहाँ सिधारी हाय हाय"

(भारतेन्दु हरिश्चन्द्र)

उपरोक्त पंक्ति में भारतेन्दु जी ने 'बनारस-अखबार' के समाचार-शीर्षक में 'उर्दू मारी गयी' पर व्यंग्य किया है। इसके साथ ही 'समधिन मधुमास' की रचना "गाली" नामक व्यंग्यगीत की शैली में की गयी है। तथा इसी प्रकार 'नये ज़माने की मुकरी' नामक शीर्षक से उन्होंने समकालीन सामाजिक और राजनीतिक विसंगतियों को ले कर कुछ मनोहारिणी मुकरियों की भी रचना की है। जिन पर अमीर खुसरो की शैली की स्पष्ट छाप दिखाई देती है। जिसमें मद्ययपान के संदर्भ में उन्होंने शोधार्थी के अनुसार निम्नलिखित व्यंग्योक्ति रचना लिखी है-

मुँह जब लागै तब नहिं छूटे, जाति मान धन सब कुछ लू टे।

पागल करि मोहिं करे खराब, क्यों सखि सज्जन? नहीं शराब।।

(भारतेन्दु हरिश्चन्द्र)

उपरोक्त संदर्भित काल में भारतेन्दु जी के अतिरिक्त भी अन्य हास्य-व्यंग्यकार रचनाकार हुए हैं जिनमें प्रेमघन एवं प्रतापनारायण मिश्र प्रमुख हैं। 'प्रेमरमघन-सर्वस्व' का 'हास्य-बिंदु' शीर्षक प्रकरण में समसामयिक स्थितियों के विनोदपूर्ण वर्णन और तज्जनित उद्बोधन की दृष्टि से सभी का हास्य-व्यंग्यकार रचनाकार के रूप में ध्यान आकृश्ट करता है। तथा प्रतापनारायण मिश्र जी की 'तृप्यन्ताम्', 'हरगंगा', 'बुढ़ापा' और 'ककराष्टक' शीर्षक नामक रचनाएँ भी अपनी नयी तर्ज एवं हास्य-व्यंग्यकार रचना के लिए प्रसिद्ध हैं।

इसी प्रकार अंग्रेजी शिक्षा-प्राप्त युवकों द्वारा भारतीय रीति-नीति को त्याग कर पाश्चात्य सभ्यता का अनुकरण करने पर प्रतापनारायण मिश्र जी ने शोधार्थी नुसार अत्यन्त मार्मिक व्यंग्य किया है-

जग जानैं इंगलिश हमैं, वाणी वस्त्रहिं जोय।

मिटै बदन कर श्याम रंग-जन्म सुफल तब होय।।

(प्रतापनारायण मिश्र)

आधुनिक हिन्दी गद्य-साहित्य में "भारतेन्दु-युगीन" रचनाओं में 'समस्या-पूर्ति':

हिन्दी-साहित्य के आधुनिक इतिहास में भारतेन्दु-युग में गृहीत रीतिकालीन, काव्यशैलियों में "समस्यापूर्ति" पर्याप्त लोकप्रिय काव्यपद्धति प्रचलित हुई। कवियों, लेखकों की प्रतिभा और लेखनी कौशल का परखने के लिए कवि-गोष्ठियों और कवि-समाजों में कठिन-से-कठिन विषयों पर समस्यापूर्ति करायी जाती थी। इसमें भारतेन्दु जी द्वारा काशी में स्थापित "कविता-वद्धिनी-सभा", कानपुर का "रसिक-समाज", बाबा सुमरसिंह द्वारा निज़ामाबाद (वर्तमान आजमगढ़) में स्थापित "कवि-समाज" आदि ऐसे ही मंच थे। जहाँ नियमित रूप से कवि गोष्ठियाँ हो ती थी और किसी भी संदर्भित विषय में "समस्यापूरण" (समस्यापूर्ति) की प्रतियोगिता के रूप में प्रोत्साहित किया जाता था तथा प्रतिष्ठित कवि इनमें प्रतिभाग करने में संकोच नहीं करते थे तथा नये नौजवान कवियों -लेखकों का इससे उत्साहवर्द्ध न होता था। कानपुर के प्रतापनारायण मिश्र द्वारा 'पपीहा जब पूछिहै पीव कहाँ' शीर्षक नामक रचना की अधोलिखित पंक्तियाँ कितनी हृदयस्पर्शी बन पड़ी हैं, उदाहरणार्थ -

बन बैठि है मान की मूरति-सी, मुख खोलत बालै न 'नाहीं' न 'हाँ'।

[8] डॉ. नगेन्द्र एवं डॉ. हरदयाल हिन्दी साहित्य का इतिहास पृष्ठ संख्या-445, 446

तुम ही मनुहारि कै जारि परे, सखियान की कौन चलाई तहाँ।

बरषा है 'प्रतापजू' धीर धरौ, अब लौं मन को समझायो जहाँ।

यह ब्यारि तबै बदलेगी कछु, पपीहा जब पूछिहै 'पीव' कहाँ?

(प्रतापनारायण मिश्र)

समस्यापूर्ति के लिए उस समय परम्परागत श्रृंगारिक विषयों का ही अधिक प्रचलन था। लेकिन यह दूसरी बात है कि नवीन सामाजिक परिवेश में हिन्दी साहित्य के इस काल में जिन नये-नये विषयों को स्थान प्राप्त हाने लगा था, कभी-कभी उनकी झलक उपर्युक्त समस्यापूर्तियों में भी दिखाई दे जाती थी। श्रृंगार रस की ललित समस्यापूर्ति के लिए प्रेमघन, लछिराम, विजयानन्द त्रिपाठी, गोविन्द गिल्लाभाई, रामकृष्ण वर्मा 'बलवीर', बेनी द्विज, ब्रजचन्द वल्लभीय आदि रचनाकारों को पर्याप्त लोकप्रियता प्राप्त हुई थी। 'चरचा चलिये की चलाइए ना' की में शोधार्थी के अनुसार प्रेमघन द्वारा अधोलिखित पंक्तियाँ प्रासंगिक हैं-

बगियान बसन्त बसेरो कियो, बसिए तेहि त्यागि तपाइए ना।

दिन काम कुतूहल के जो बने, तिन बीच बियोग बुलाइए ना।।

'घन प्रेम' बढ़ाय कै प्रेम अहो! बिथा बारि बृथा बरसाइए ना।

चित चैत की चाँदनी चाह भरी, चरचा चलिबै की चलाइए ना।

(प्रेमघन)

समस्यापूरण का वैशिष्ट्य कवियों की सूझ-बूझ, उक्ति-वैचित्र्य और और आशुकवित्व में होता है। तत्कालीन कवि समाज में समस्यापूर्ति के लिए वाहवाही प्राप्त करना गौरव की बात समझा जाता था। अंबिकादत्त व्यास ने अपने कवि-जीवन का आरम्भ कविता-वद्धिनी-सभा में 'पूरी अमी की कटोरिया सी', 'चिरजीवी रहौ विक्टोरिया रानी' समस्या-की-पूर्ति करके किया था और इस पर उन्हें "सुकवि" की 'उपाधि' भी प्राप्त हुई थी। इनके पिता दुर्गा दत्त व्यास भी ब्रजभाषा के रसिक कवि थे, इनके द्वारा संकलित 'समस्यापूर्ति-प्रकाश' उस समय संदर्भित काल की प्रसिद्ध रचना है। इस प्रकार के अन्य संग्रहों में अम्बिकादत्त व्यास जी का 'समस्यापूर्ति-सर्वस्व', गोविन्द गिल्लाभाई का 'समस्यापूति-प्रदीप' और सीतापुर-निवासी गंगाधर 'द्विजगंग' का 'समस्या-प्रकाश' उल्लेखनीय है। नर्म देवेश्वर प्रसाद सिंह जी के कविता-संग्रह 'पंचरत्न' में उनकी समस्यापूर्तियाँ भी संगृहीत हैं।

इसी प्रकार से "भारतेन्दु-ग्रन्थावली" में भारतेन्दु जी की समस्यापूर्तियों का भी संग्रह किया गया है। संदर्भित-शोध के फलस्वरूप उदाहरणस्वरूप 'पिय प्यारे तिहारे निहारे बिना अंखियाँ दुखियाँ नहिं मानती हैं' में भारतेन्दुकृत प्रतिपूर्ति निम्नवत है-

यह संग में लागिये डोलैं सदा बिन देखे न धीरज आनती हैं।

छिनहू जो वियोग परै 'हरिश्चन्द' तो प्रलै की सु ठानती हैं।।

बसनी में थिरैं न झपैं उझपैं, पल में न समाइबौ जानती हैं।

पिय प्यारे तिहारे निहारे बिना अँखियाँ दुखियाँ नहिं मानती हैं।।

(भारतेन्दु हरिश्चन्द्र)

निष्कर्षः

आधुनिक हिन्दी गद्य-साहित्य के विकासक्रम में 'भारतेन्द्र-युग' के हिन्दी गद्य-साहित्य का महत्व और मूल्य हिन्दी-साहित्य में असाधारण है। इसी युग में हिन्दी-प्रदेश और देश में आधुनिक जीवन-चेतना का उद्घोष हुआ। मध्यमवर्गीय सामाजिक चेतना के परिवेश में साहित्य रचना का जो रूप उभरा, उसमें कहीं-कहीं सामन्तीय संस्कारों का अवशेष लक्षित होता है, किन्तु वह टूटते के क्रम में है। रचनागत पतिपाद्य की दृष्टि से यह बहुत बड़ा परिवर्तन था तथा हिन्दी-साहित्य सृजन की दृष्टि से आधुनिक हिन्दी-गद्य साहित्य की प्रायः सभी विधाओं का सूत्रपात इसी युग में हुआ। विशेषतः निबन्ध तथा नाटक इन दोनों विधाओं में लेखकों को अभुतपूर्व सफलता प्राप्त हुई, उपन्यासों मंे सामाजिक जीवन के स्पंदन का स्वर भी इसी युग में सुनायी पड़ने लगा। सब कुछ मिलाकर 'भारतेन्दु-काल' का साहित्य व्यापक जागरण, राष्ट्रीय-जागरण का संदेश लेकर आया तथा भाषा के अभूतपूर्व विकास में भी प्रगति हुई। इस युग में न केवल "हिन्दी-गद्य साहित्य" का स्परूप स्थिर हुआ, वरन् उसके शुद्ध साहित्योपयोगी और व्यवहारोपयोगी रूपों की पूर्ण प्रतिष्ठा भी हुई।

अतः अन्त में प्रस्तुत शोध में निष्कर्ष निकलता है कि भारतेन्दु-युग राष्ट्रीयजागरण, देशभक्ति की भावना, एवं कृतियों में श्रृंगारिकता, लोकधर्म, सामाजिक भावना, सांस्कृतिक विकास इत्यादि लेकर आया।

संदर्भ -ग्रन्थ सूची:

1. डॉ. नगेन्द्र एवं डॉ. हरदयाल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, अड़तालिसवाँ संस्करण-2015, (पृष्ठ संख्या- 399, 437, 439, 440, 441, 442, 444, 445, 446, 456, 473)।

2. शुक्ल आचार्य रामचन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास, प्रभात पेपरबैक्स, नई दिल्ली, संस्कण-2016, (पृष्ठ संख्या- 381, 382, 390, 391)।

3. बाली डॉ. तारकनाथ, हिन्दी साहित्य का आधुनिक इतिहास, प्रभात प्रकाशन दिल्ली, प्रथम संस्करण-2017, (पृष्ठ संख्या- 238, 239, 241, 242, 244, 247)।

4. सिंह बच्चन, हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण-2016, (पृष्ठ संख्या- 307, 308,309)।

5. त्रिपाठी विश्वनाथ, हिन्दी साहित्य का सरल इतिहास, ओरियण्ट ब्लैकस्वां न प्रा.लि. हैदराबाद, पुर्नमुद्रित संस्करण- 2016 (पृष्ठ संख्या- 91, 102, 103)।

6. शुक्ल आचार्य रामचन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास, पवन पॉकेट बुक्स नई सड़क दिल्ली (पृष्ठ संख्या- 265, 291, 292, 293, 297)।

7. भीतर-भीतर सब रस चूसै, हँसि-हँसि के तन-मन-धन मूसै।

   जहिर बातन में अति तेज, क्यों सखि सज्जन! नहीं अंगरेज़।।

   (भारतेन्दु -हरिश्चन्द्र)

8. साँझ सवेरे पंछी सब क्या कहते हैं कुछ तेरा है।

   हम सब एक दिन उड़ जाएँगे यह दिन चार बसेरा है।।

   (भारतेन्दु हरिश्चन्द्र)

9. देखिए, 'भारतेन्दु – ग्रन्थावली' भाग-2 (पृष्ठ संख्या- 203)।

Corresponding Author

Dr. Okendra*

PhD Scholarly, Department of Hindi, Uttarakhand